बलबीर सिंह

बनाम

दिल्ली राज्य

21 जून, 2007

(डॉ. अरिजीत पसायत और पी.पी. नौलेकर, जे.जे.)

आतंकवादी और विध्वंसकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1987-धारा 3, 4, 5, 6 व 20क(2)- धारा 20क 2 के अंतर्गत पुलिस आयुक्त की स्वीकृति का अभाव- प्रभाव- अभिनिर्धारित : परिणामस्वरूप नामित टाडा न्यायालय को मामले में कार्यवाही करने और अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं थी- लेकिन इससे अभियुक्त को दोषमुक्त नहीं किया गया- बाद में स्वीकृति जारी करने पर अभियुक्त के विरुद्ध विधितः कार्यवाही जारी रखी जा सकती थी- आयुध अधिनियम, 1959- धारा 25 व 26- दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 300

दिनांक 19.04.1997 के आदेश द्वारा नामित टाडा न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि आतंकवादी और विध्वंसकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1987 की धारा 20क की उपधारा 2 के तहत आवश्यक पुलिस आयुक्त की स्वीकृति के अभाव में अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाहियां दूषित -नॉन इस्ट हो गई थीं।

उक्त आदेश के अनुसरण में स्वीकृति जारी की गई व नामित टाडा न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा धारा 300 दण्ड प्रक्रिया संहिता के वस्तुतः उल्लंघन के संबंध में उठाई गई आपत्ति को खारिज करते हुए दिनांक 02.03.2002 के आक्षेपित आदेश द्वारा समन जारी किये गये। न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाहियां विधितः जारी रखी जा सकती हैं और अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 3, 4, 5 व 6 टाडा अधिनियम के अंतर्गत तथा धारा 25, 26 आयुध अधिनियम, 1959 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध का प्रसंज्ञान लिया।

इस न्यायालय में अपील में यह तर्क दिया गया कि नामित टाडा न्यायालय द्वारा व्यक्त मत स्थिर रखे जाने योग्य नहीं है और लम्बी अवधि के बाद तथा स्वयं कानून टाडा का प्रभाव समाप्त होने के पश्चात् कार्यवाही जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

अपील खारिज करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि-

1.1 यह स्थिति अपवाद रहित प्रतीत होती है कि संबंधित न्यायालय निर्णय दिनांक 19.04.1997 द्वारा दोषमुक्त करने का निर्देश नहीं दे सकता था। स्वीकृति के अभाव में न्यायालय को मामले में कार्यवाही करने व अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता प्राप्त नहीं थी, परन्तु इस संबंध में पारित किये गये आदेश से अभियुक्त को बरी नहीं किया जा सकता है (पैरा-07)(1105-डी)

1.2 जहां किसी व्यक्ति द्वारा ऐसा कार्य किया गया है जो विधि द्वारा दण्डनीय है तो वह व्यक्ति विचारण का सामना करने के लिए दायी है और यह दायित्व केवल इस आधार पर समाप्त नहीं हो जाता है कि जिस न्यायालय के समक्ष उसे विचारण के लिए प्रस्तुत किया गया है उस न्यायालय के मत में उसे विचारण करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है या उस व्यक्ति के विरुद्ध अधिरोपित अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं है। [पैरा-12½¼1106-सी, डी]

मोहम्मद शफी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 69, बास देव अग्रवाल बनाम किंग एम्परर, ए.आई.आर. 1945 एफ.सी. 16 तथा फली मुल्ला नूर भोय बनाम दी किंग ए.आई.आर. 1949 पी.सी. 264

2. जहां तक धारा 300(1), दण्ड प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता का संबंध है वहां प्रतिषेध को लागू करने की आवश्यक शर्त है- (1) न्यायालय को संज्ञान लेने तथा अभियुक्त का विचारण करने की अधिकारिता प्राप्त थी तथा (2) न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि या दोषमुक्ति का आदेश पारित किया और ऐसी दोषसिद्धि/दोषमुक्ति प्रवर्तन में हो। (पैरा-12) (1106-ई, एफ)

3. विलम्बित स्वीकृति से संबंधित प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा पूर्व में विनिश्चित मामले की पृष्ठभूमि पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। सभी आपराधिक कार्यवाहियों के निष्कर्ष के लिए एक बाहरी

सीमा निर्धारित करना उचित नहीं है, ना ही व्यावहारिक है और ना ही न्यायिक रूप से अनुज्ञेय है। आपराधिक न्यायालय केवल समय बीतने के कारण आपराधिक कार्यवाहियों या मुकदमों को समाप्त करने के लिए बाध्य नहीं है। किसी न्यायालय द्वारा ऐसी समय सीमायें कार्यवाहियां या विचारण जारी रखने के लिए स्वतः प्रतिषेध के रूप में मानी नहीं जा सकती हैं और ना ही मानी जायेंगी और न्यायालय कार्यवाहियों को समाप्त करने के लिए तथा अभियुक्त को दोषमुक्त या उन्मोचित करने के लिए बाध्य नहीं है। (पैरा-13) (1106-एफः 1107-सी,डी,एफ,जी)

पी. रामचन्द्र राव बनाम कर्नाटक राज्य, (2002) 4 एस.सी.सी. 578

4. नामित न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित आदेश किसी आयोग्यता से ग्रस्त न होने से हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। हालांकि, विचारण न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह मामले को शीघ्रातिशीघ्र यथासंभव इस आदेश की प्राप्ति से 6 माह के भीतर निस्तारण करने का प्रयास करे। (पैरा-14) (1108-बी, सी)

आपराधिक अपीलीय अधिकारिताः आपराधिक अपील नंबर 844/2002

नामित टाडा न्यायालय-द्वितीय, दिल्ली द्वारा सेशन प्रकरण संख्या 48/2001 में पारित आदेश दिनांक 02.03.2002 के विरुद्ध

राजीव दत्ता, एच.एस. भाटी, नमता चौपड़ा और आर. नेदुमारन- अपीलार्थी की ओर से

अशोक भान और डी.एस. मेहरा- प्रत्यर्थी की ओर से

न्यायालय की ओर से डॉ. अरिजीत पसायत, जे. द्वारा निर्णय दिया गया।

1. इस अपील में नामित न्यायालय-द्वितीय, दिल्ली के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा सेशन प्रकरण संख्या 48/2002 में पारित निर्णय कि अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाहियां विधितः जारी रखी जा सकती हैं तथा अपीलार्थी के विरुद्ध आतंकवादी और विध्वंसकारी गतिविधि(रोकथाम) अधिनियम, 1987- धारा 3, 4, 5, 6 (संक्षेप में टाडा अधिनियम) तथा आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 और 26 (संक्षेप में आयुध अधिनियम) के अंतर्गत दण्डनीय अपराध का संज्ञान लिया गया था, को चुनौती दी गयी है।

2. विवाद का क्षेत्र बहुत सीमित है और तथ्यात्मक पहलु का संक्षिप्त संदर्भ पर्याप्त है।

अपीलार्थी व एक पलजीत कौर उर्फ रिचपाल कौर उर्फ पाली पत्नि परमजीत सिंह ने कथित तौर पर धारा 3, 4, 5 और 6 टाडा अधिनियम तथा धारा 25 व 26 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया था। अभिकथित अपराध दिनांक 05 दिसम्बर 1992 को किये जाने का

आरोप था। टाडा अधिनियम में संशोधन द्वारा धारा 20क (2) को दिनांक 22.05.1993 अर्थात् आरोप पत्र दाखिल करने से पूर्व प्रवर्तित किया गया था। दिनांक 16.12.1993 को आरोप विरचित किये गये थे। दिनांक 06.05.1994 को अपीलार्थी को जमानत दी गयी थी। तत्पश्चात्8 वर्ष के अवसान पश्चात् करेंसी पीरियड, टाडा अधिनियम की अवधि 23.05.1995 को समाप्त हो गयी। दिनांक 19.04.1997 के आदेश द्वारा नामित न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि टाडा अधिनियम की धारा 20क की उपधारा 2 के अंतर्गत आवश्यक पुलिस आयुक्त की स्वीकृति के अभाव में कार्यवाहियां दूषित (नॉन इस्ट) हो गयी थीं और न्यायालय द्वारा टाडा अधिनियम के अंतर्गत लिया गया संज्ञान विधि की दृष्टि में उचित नहीं था।

3. संबंधित न्यायालय द्वारा निर्णय दिनांक 19.04.1997 में, ‘‘स्वीकृति के अभाव में अभियुक्त की दोषमुक्ति की गयी’’, अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया था। तत्पश्चात् संबंधित न्यायालय के आदेश के अनुसरण में जप्तशुदा सामग्री को दिनांक 03.02.1998 तक जप्त रखा गया। दिनांक 04.07.2021 को स्वीकृति जारी की गयी और इस आशय का आदेश पारित किया गया तथा 18.07.2001 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और आक्षेपित आदेश द्वारा दिनांक 02.03.2002 को समन जारी किये गये।

4. न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा कार्यवाहियां दूषित(नॉन इस्ट) होने और धारा 300 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षिप्ततः संहिता) का वस्तुतः

उल्लंघन होने बाबत् उठाई गई आपत्ति को खारिज कर दिया। नामित न्यायालय द्वारा तर्क को स्वीकार नहीं किया गया और कहा कि हालांकि अभिव्यक्ति ''दोषमुक्ति'' का प्रयोग किया गया था, परन्तु इसे गुणावगुण पर दोषमुक्ति का आदेश नहीं कहा जा सकता है और यह केवल उन्मोचन के आदेश के रूप में प्रवर्तित हो सकता है।

5. अपील के समर्थन में अधिवक्ता अपीलार्थी ने निवेदन किया कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त किया गया मत स्थिर रखे जाने योग्य नहीं है। उनके अनुसार लम्बी अवधि व्यतीत होने के पश्चात् और स्वयं कानून के अप्रभावी (करेंसी ऑफ स्टेट्यूट) होने के पश्चात् कार्यवाही का जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

6. प्रत्यर्थी राज्य की ओर से विद्वान् अधिवक्ता द्वारा निचली अदालत के आदेश का समर्थन किया गया।

7. यह स्थिति अपवाद रहित प्रतीत होती है कि संबंधित न्यायालय निर्णय दिनांक 19.04.1997 द्वारा दोषमुक्त करने का निर्देश नहीं दे सकता था। स्वीकृति के अभाव में न्यायालय को मामले में कार्यवाही करने व अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता प्राप्त नहीं थी, परन्तु इस संबंध में पारित किये गये आदेश से अभियुक्त को बरी नहीं किया जा सकता है।

8. अधिनियम की धारा 20-क (2) निम्नानुसार है:-

"कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के तहत पुलिस महानिरीक्षक की पूर्व स्वीकृति अथवा पुलिस आयुक्त पूर्व स्वीकृति के बिना अपराध का संज्ञान नहीं लेगा।"

9. धारा 20-क (2) अपराध का संज्ञान लिये जाने पर प्रतिषेध के रूप में लागू होती है।

10. संघीय न्यायालय द्वारा "बास देव अग्रवाल बनाम किंग एम्परर, ए.आई.आर. (1945) एफ.सी. 16" में इस प्रकार के आदेश के प्रभाव पर विचार किया गया। निर्णय का सुसंगत भाग निम्नानुसार है:-

"कि वैध स्वीकृति के बिना संस्थित किया गया अभियोजन अवैध है और कॉमन लॉ के अधीन स्वतः दोषमुक्त या दोषसिद्ध का तर्क केवल वहीं उठाया जा सकता है जहां प्रथम बार विचारण दोषमुक्ति या दोषसिद्धि बाबत् वैध आदेश पारित करने में सक्षम न्यायालय के समक्ष हुआ हो। जब तक कि पूर्व का विचारण विधितः ना हो व जिसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि हो सकती थी, अभियुक्त दोहरे खतरे के अधीन नहीं था।"

11. "बास देव अग्रवाल" के मामले में अभिनिर्धारित सिद्धांत का "फली मुल्ला नूर भोय बनाम दी किंग, ए.आई.आर. (1949) पी.सी. 264" में भी अनुसरण किया गया। उक्त मामले में वस्तु स्थिति इस प्रकार थी कि आरोप विरचित करने के उपरान्त मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को

दोषमुक्त कर दिया गया क्योंकि विधि द्वारा अपेक्षित स्वीकृति प्रस्तुत नहीं की गयी थी और विचारण जारी रहने योग्य नहीं था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि दोषमुक्ति का आदेश अधिकारिता के बिना था और केवल उन्मोचन के आदेश के रूप में प्रवर्तन योग्य था क्योंकि ऐसे मामले में मजिस्ट्रेट को अभियुक्त को इस आधार पर उन्मोचित करना चाहिए था कि उसे विचारण की अधिकारिता नहीं है।

12. इस न्यायालय द्वारा ''मोहम्मद सफी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए.आई.आर. (1966) एस.सी. 69'' में निम्नानुसार पाया कि:-

> ''जहां एक न्यायालय हालांकि गलती से, इस निष्कर्ष पर पहुंचती है वहां यह समझना मुश्किल है कि वह न्यायालय अपने सामने दोषी ठहराये गये व्यक्ति को उसके खिलाफ लगाये गये अपराध से पूरी तरह से कैसे मुक्त कर सकती है। जहां किसी व्यक्ति द्वारा ऐसा कार्य किया गया है जो विधि द्वारा दण्डनीय है तो वह व्यक्ति विचारण का सामना करने के लिए दायी है और यह दायित्व केवल इस आधार पर समाप्त नहीं हो जाता है कि जिस न्यायालय के समक्ष उसे विचारण के लिए प्रस्तुत किया गया है उस न्यायालय के मत में उसे विचारण करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है या उस व्यक्ति के विरुद्ध अधिरोपित अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं है। इसलिये जहां एक

न्यायालय यह कहता है, हालांकि गलती से कि वह अपराध का संज्ञान लेने में सक्षम नहीं है वहां उसके पास उस व्यक्ति को अपराध से दोषमुक्त करने की कोई शक्ति नहीं है।"

जहां तक धारा 300(1), दण्ड प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता का संबंध है वहां प्रतिषेध को लागू करने की आवश्यक शर्त है- (1) न्यायालय को संज्ञान लेने तथा अभियुक्त का विचारण करने की अधिकारिता प्राप्त थी तथा (2) न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि या दोषमुक्ति का आदेश पारित किया और ऐसी दोषसिद्धि/दोषमुक्ति प्रवर्तन में हो।

13. विलम्बित स्वीकृति से संबंधित प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा पूर्व में विनिश्चित मामले "पी. रामचन्द्र राव बनाम कनार्टक राज्य, (2002) 4 एस.सी.सी. 578" की पृष्ठभूमि पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। पैरा 29 में निम्नानुसार पाया गया :-

"29. उपरोक्त सभी कारणों से हमारा मत है कि कामन काज मामले में(I) (1996) 4) एस.सी.सी. 33 (जैसा कि कामन काज-(II) (1996) 6 एस.सी.सी. 775 में संशोधित) और राजदेव शर्मा (I) और (II) (1998) (7) एस.सी.सी. 507 और 1999 (7) एस.सी.सी. 604) न्यायालय उस सीमा की अवधि निर्धारित नहीं कर सकता था जिसके आगे किसी आपराधिक मामले का विचारण या

आपराधिक कार्यवाही जारी नहीं रह सकती और इसे आदेशात्मक रूप से अभियुक्त को दोषमुक्त या उन्मोचित किये जाने के आदेश से बंद किया जाना चाहिए। निष्कर्षात्मक रूप में हम अभिनिर्धारित करते हैं कि :-

(1) ए.आर. अंतुले मामले में अभिव्यक्त मत सही है और अभी भी लागू है।

(2) संविधान के अनुच्छेद 21 से उत्पन्न शीघ्र विचारण के अधिकार का प्रस्ताव और ए.आर. अंतुले मामले में दिशा निर्देश के रूप में शीघ्र विचारण के अधिकार की व्याख्या, शीघ्र विचारण के अधिकार का पयार्प्त रूप से ध्यान रखती है। हम उक्त प्रस्तावों का समर्थन व पुष्टि करते हैं।

(3) ए.आर. अंतुले मामले में निर्धारित दिशा निर्देश सम्पूर्ण नहीं हैं केवल उदाहरणात्मक हैं। इनका उद्देश्य अनुल्लंघनीय नियमों की तरह प्रवर्तित होना या स्ट्रेटजैकेट सूत्र की तरह लागू करना नहीं है। उनकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले के तथ्य परिस्थिति पर निर्भर करेगी। सभी स्थितियों का पूर्वानुमान लगाना मुश्किल है और कोई सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

(4) सभी आपराधिक कार्यवाहियों के निष्कर्ष के लिए एक बाहरी सीमा निर्धारित करना उचित नहीं है, ना ही

व्यावहारिक है और ना ही न्यायिक रूप से अनुज्ञेय है। कॉमन कॉज (I), राज देव शर्मा (I) और राज देव शर्मा (II) में बनायी गयी सीमा अवधि या सीमा अवधि का प्रतिषेध तथा दिये गये कई दिशा निर्देश इस प्रकार से निर्धारित नहीं किये जा सकते हैं और ये अच्छे कानून नहीं हैं। जैसा कि कॉमन कॉज केस (I), राज देव शर्मा (I) और राज देव शर्मा (II) में दिये गये निर्देशों द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि आपराधिक न्यायालय केवल समय व्यतीत होने के आधार पर विचारण को या आपराधिक कार्यवाहियों को समाप्त करने के लिए बाध्य नहीं है। अधिक से अधिक उक्त निर्णयों में निर्धारित समय की अवधि को विचारण या कार्यवाही को बंद करने के अनुस्मारक के रूप में काम में लिया जा सकता है जब उन्हें अपने न्यायिक मस्तिष्क को उनके सामने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर "ए.आर. अंतुले" मामले में बताये गये प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए लागू करने और निर्धारित करने के लिए राजी किया जा सकता है कि क्या विचारण या कार्यवाही में इतनी अधिक देरी हुई है कि इसे दमनकारी या अनुचित कहा जा सकता है। इस तरह की समय सीमा को किसी भी न्यायालय द्वारा विचारण या कार्यवाही को जारी रखने में बाधा के रूप में नहीं माना जा

सकता है और न ही न्यायालय को अनिवार्य रूप से इसे समाप्त करने और अभियुक्त को दोषमुक्त या उन्मोचित करने के लिए बाध्य किया जायेगा।

(5) शीघ्र विचारण के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए आपराधिक न्यायालयों को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 309, 311 और 258 में उपलब्ध शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए। एक सतर्क और मेहनती विचारण न्यायाधीश किसी भी दिशा निर्देश की तुलना में ऐसे अधिकार का बेहतर रक्षक साबित हो सकता है। उपयुक्त मामलों में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 और संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय की अधिकारिता समुचित अनुतोष व उचित दिशा निर्देश हेतु हो सकती है।

(6) यह भारत संघ और राज्य सरकारों को अपेक्षित धन, जनशक्ति और बुनियादी ढांचा प्रदान करके न्यायपालिका को मात्राात्मक और गुणात्मक रूप से मजबूत करने के उनके संवैधानित दायित्व की याद दिलाने का उपयुक्त अवसर है। हमें आशा और विश्वास है कि सरकारें कार्यवाही करेंगी।

हम दिनांक 19.09.2000 और 26.04.2001 के संदर्भित आदेश के क्रम में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर उपरोक्तानुसार देते हैं।"

14. नामित न्यालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित आदेश किसी आयोग्यता से ग्रस्त न होने से हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। हालांकि, विचारण न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह मामले को शीघ्रातिशीघ्र यथासंभव इस आदेश की प्राप्ति से 6 माह के भीतर निस्तारण करने का प्रयास करें।

15. अपील खारिज की जाती है।

बी.बी.बी.

अपील खारिज

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' के जरिए अनुवादक न्यायिक अधिकारी गीता पाठक, आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।